लोक संगीत होली की साहित्यिक, सांस्कृतिक विरासत :—माथुर चतुर्वेदी समुदाय के संदर्भ में

विनीता चौब[1], डॉ. संगीता पाठक[2]

[1]शोधार्थी, कला संकाय, रबीन्द्रनाथ टैगोर विष्वविद्यालय, रायसेन (म.प्र.) भारत

[2]डीन, कला संकाय, रबीन्द्रनाथ टैगोर विष्वविद्यालय, रायसेन (म.प्र.) भारत

सारांश

संगीत की अमर धारा धरा के जन्म से ही आबद्ध रही है। इसलिये प्रकृति के हर तत्व में संगीत की स्वरलहरियाँ विद्यमान है। भारतीय समाज में भी वैदिक काल से संगीत की प्रधानता रही है। संगीत की इसी अमर परंपरा के वाहकों में भागीदार हैं माथुर चतुर्वेदी समुदाय। माथुर चतुर्वेदी समुदाय का अस्तित्व वैदिक काल से रहा है। मथुरा इनका मूल स्थान है। ब्रज निवासी होने के कारण लोक संगीत की अनुपम परंपरा इन्हें विरासत में मिली। विरासत में मिली लोक संगीत की (विशेषकर होली संगीत) इसी परंपरा को चतुर्वेदी समुदाय ने साहित्यिक और सांस्कृतिक रूप से सहेजा, उन्नत किया और कालांतर में नये आयाम दिये।

बीज शब्द – समृद्ध, विरासत, ब्रज, लोकसंगीत, राग, ताल, दस्तावेजीकरण, सांस्कृतिक, मृदंग, अबीर, गुलाल

I प्रस्तावना

मानव सभ्यता में संगीत का अस्तित्व धरा के उद्भव के साथ ही विद्यमान हो गया था। प्रकृति के हर तत्व में स्वर लहरियाँ समाहित हैं। श्री रामनरेश त्रिपाठी ने कहा है कि ''झरनों का अविराम नाद, पत्तों की मर्मर ध्वनि, चंचल जल का कलकल, मेघ का गर्जन, पानी का छमाछम बरसना, आंधी का हा हाकार, कलियों का चटकना, विक्षुब्ध समुद्र का महारव, खग/पशु/पक्षी की भाषाएँ आदि सब संगीत के ही मंद्रतार, स्वर और लय हैं।

हिन्दू धार्मिक ग्रंथों में ज्ञान की देवी सरस्वती को संगीत की अधिष्ठात्री देवी के रूप में माना गया है। गंधर्व कलाओं में भी संगीत को प्रमुख स्थान दिया गया है। शोध में ऐसे कई प्रमाण मिले हैं जो यह रेखांकित करते हैं कि भारतीय संगीत की परंपरा कई युगों पुरानी है। सन् 1924 में पंजाब राज्य के मोन्टगोमरी जिले में मिले खण्डहरों की दीवारें अनेक सांगीतिक चित्रों से रचित है जिसके आधार पर यह सिद्ध किया गया है कि भारतीय संगीत ईसा से लगभग पाँच हजार वर्ष पुराना है। इसी पुरातन भारतीय संगीत की गाथा बिना मुरलीधर श्रीकृष्ण के माधुर्य के बिना अधूरी है। धार्मिक ग्रंथ भागवत पुराण में दर्शाया गया है कि कैसे भगवान श्रीकृष्ण के वेणुवादन से यमुना का चंचल जल भी शांत और स्थिर हो जाता था। यह एक श्लोक में स्पष्ट किया गया है

''नहांस्तदा तदुपधार्य मुकुंद गीत मावर्त लक्षित मनो भवमग्न वेगाः। आलिंगन स्थगित भूमिर्भु जैर्भ्ररारेर्ग्रहण्न्ति पाद युगलं कमलोपहाराः।

अर्थात् ''श्रीकृष्ण की वंशी सुनकर नदियाँ भंवर के रूप में अपना कामोच्छवास कर रही हैं। उनका वेग रूक गया है और वे आलिंगन के रूप में तरंग रूपी भुजाओं में कमल के उपहार लेकर भगवान के चरण छू रही हैं।''

कालांतर में भारतीय वैज्ञानिक जगदीशचन्द्र बसु ने भी अपनी प्रयोगशाला में ऐसे यंत्र बनाए थे जिनसे उन्होंने यह सिद्ध किया कि जगत के हर तत्व पर संगीत का प्रभाव पड़ता है।

II माथुर चतुर्वेदी समुदाय और संगीत विरासत

संगीत की इसी अपूर्व परंपरा के समृद्धशाली विरासतदार है माथुर चतुर्वेदी समुदाय। संगीत की तरह ही माथुर चतुर्वेदी समुदाय का अस्तित्व भी सदियों पुराना है। ऐतिहासिक अभिलेखों के अनुसार माथुर चतुर्वेदी जाति का अस्तित्व वैदिक काल से लेकर पौराणिक काल, आद्यशंकराचार्य काल, बुद्धकाल, यवनशासन काल, धर्माचार्य काल एवं वर्तमान काल तक निरन्तर उपस्थित रहा है। माथुर चतुर्वेदी ही ऐसे ब्राह्मण रहे हैं जो गर्भ से लेकर मृत्यु तक के 14 संस्कारों के ज्ञाता थे। आदिकाल से माथुर चतुर्वेदियों का मूल निवास मथुरा रहा और यहीं रहकर आरम्भ में वे अपने पुरोहितवर्ग के सर्वकार्य संपन्न किया करते थे। परिस्थितिजन्य कारणों से माथुर चतुर्वेदी समुदाय को अपने मूल स्थान से पलायन करना पड़ा। यवनों के अत्याचारों के कारण चतुर्वेदियों को भदावर क्षेत्र (मप्र–उप्र का सीमावर्ती इलाका) में स्थानांतरित होना पड़ा। प्रमुख रूप से बटेश्वर, बिजकौली, मई, होलीपुरा, तालगाँव, पुराकन्हैरा, कमतरी, चन्द्रपुर, कछपुरा, नहटौली, पिनाहट, तरसोखर, नौगवां, पारना, हथकान्त, कचौरा, अटेर तथा रीछापुरा आदि क्षेत्रों में माथुर चतुर्वेदी समुदाय ने शरण ली। इस समुदाय ने पुरोहित पद के अलावा मल्ल विद्या, संगीत में भी महत्वपूर्ण भागीदारी की। संगीत में उनकी भागीदारी श्लाघनीय रही है। विषेषकर होली संगीत के साहित्यिक सृजन और गायन में। माथुर चतुर्वेदियों का आदि स्थान ब्रजभूमि मथुरा रही है। यहाँ कण–कण में बांकेबिहारी श्रीकृष्ण की मुरली का माधुर्य विद्यमान है। मथुरावासी होने के कारण ही माथुर चतुर्वेदी समुदाय को संगीत विरासत में मिला है। ब्रज के संगीत में रागबद्धता, लयबद्धता एवं तालबद्धता उसकी प्रमुख विशेषता रही है। ब्रज को संगीतपरक रचनाएं प्रदान करने में स्वामी हरिदास और श्रीहित हरिवंशजी, वल्लभचार्य और अष्टछाप के कवियों – सूरदास, कुंभनदास, **छीतस्वामी**, गोविन्द स्वामी, परमानन्द दास आदि का अनन्य योगदान रहा है। इन भक्त कवियों की अमर रचनाएँ आज भी ब्रज के जनमानस में जस की तस सुनी जा सकती है। माथुर चतुर्वेदियों पर भी इनका प्रभाव रहा है। माथुर चतुर्वेदी समुदाय ने विरासत में मिली इसी साहित्यिक तथा संगीत की धरोहर को न सिर्फ सहेजा है बल्कि उन्नत कर संपूर्ण

भारत के जनमानस में पहुँचाने में अपना असाधारण योगदान दिया है। इस समुदाय ने लोक साहित्य तथा लोक संगीत को अपनी कर्मस्थली बनाया। लोक से उपजे साहित्य और सांस्कृतिक धरोहर को सहेजकर नये आयाम स्थापित किये।

व्याकरण सम्मति के अनुसार लोक शब्द संस्कृत के ''लोक दर्शने'' धातु से धञ प्रत्यय बनने पर बना है। इस धातु का अर्थ देखना होता है, जिसका लट् लकार में अन्य पुरूष एकवचन का रूप ''लोकते'' होता है। अतः लोक शब्द का अर्थ हुआ ''देखने वाला''। इस प्रकार जो इस कार्य को करता है लोक कहलाता है।

सरल शब्दों में कहा जाए तो लोक शब्द का अर्थ किसी जनपद या ग्राम्य से नहीं है बल्कि नगरों और ग्रामों में फैली हुई उस जनता से है जिन का ज्ञान पुस्तकों का न होकर अनुभव का भंडार होता है। माथुर चतुर्वेदी समुदाय में संगीत की अनुभवजनित विरासत पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित होती आ रही है। विशेषज्ञों का कहना है कि धुन, लोकसंगीत का प्राण होती है और राग शास्त्रीय संगीत का। माथुर चतुर्वेदी समुदाय ने लोकसंगीत को सहेजते हुए उसे शास्त्रीयता के स्तर तक पहुँचाने के हर संभव प्रयास अपने होली गायन में किये हैं। जहाँ एक ओर साहित्यिक रूप से माथुर चतुर्वेदियों ने होली पर कई उत्कृष्ट पदों की रचना की है वहीं दूसरी ओर बिना किसी प्रशिक्षण के संगीत में होली गीतों को विविध रागों में गाकर उच्च मानक स्थापित किये हैं। ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में माथुर चतुर्वेदियों द्वारा रचित पदों तथा होली गायन के व्यापक उदाहरण है जिनसे सिद्ध होता है कि उन्होंने होली की सांस्कृतिक विरासत को सहेजने के अप्रतिम प्रयास किये हैं।

अष्टछाप कवियों में छीतस्वामी (1571–1642) महान भक्त कवि हुए हैं। वे मथुरा के रहने वाले माथुर चतुर्वेदी थे। उन्होंने गोकुल में गोस्वामी विटठलनाथजी से पुष्टिमार्ग की दीक्षा ली। इसके बाद उन्होंने अपने जीवनकाल में कृष्ण की भक्ति में कई पद रचे। कांकरौली विद्या विभाग ने उनके पदों का संकलन प्रकाशित किया। छीतस्वामी अपने पदों में होली में संगीत की स्वर लहरियों के तारतम्य और उल्लास को चित्रित करते हुए कहते हैं कि –

(क) लाल संग रास–रस लेत मान रसिक रवनि
ग्रग्रता, ग्रग्रता, तत तत तत थेई थेई गति लीने
सरिगमपधनी गमपधनी धुनि सुनि ब्रजराज कुँवर–गावत री
अति गति जातिभेद सहित ताननि नननननननन अनिगनि गति लीने
उदित मुदित सरद चंद, बंद छुटे कंचुकी के
वैभव भुव निरखि–निरखि कोटि काम हीने
बिहरत बन रास–बिलास, दंपत्ति दर ईषद हास
'छीत–स्वामी' गिरिधर रस–बस करि लीने।।
नगर की अल्हड़ किशोरियों और मोहन के संग होली के रास को मधुरता से प्रकट करते हुए कहते हैं कि –

(ख) नागरी नव रंग कुँवरि मोहन संग नाँचै
कटि–तट पट किंकिनी कल, नूपुर–रव रूनझुन करै
निर्तत, करत चपल चरन–पात घात साँचै।
उदित मुदित गगन सघन, घोरत घन–भेद भेद
कोकिल कल गान करति पंचम सुर बाँचै।
'छीतस्वामी' गोवर्धननाथ हाथ वितरत रस
वर विलास वृन्दावन–वास प्रेम राँचै।।

माथुर चतुर्वेदी समुदाय ने अपना साहित्य ब्रजभाषा के माधुर्य में रचा है। किशोरी देवी चतुर्वेदी सुल्तानपुर (उप्र) घनश्याम और बलराम द्वारा ब्रजधाम में अबीर, गुलाल एवं मृदंग की थाप के साथ होली खेलने का सुन्दर वर्णन करते हुए कहती हैं कि –
आजु घनस्याम, बलराम, ब्रज–बाम मिलि
ब्रज उमंगाई नव आनंद तरंग है।
कोऊ भरि झोरिन उड़ावत अबीर, कोऊ–
गावत सुराग कहूं बाजत मृदंग है।
दौरि ब्रज बाल नंद लाल के सुभाल पै लै
मलत गुलाल लाल कीन्हौं सब अंग है।
जाकौ पार पायौ ना गिरीस औ मुनीस आदि
सोई प्रभु ब्रज में मचायौ फाग रंग है।।

पं. गजेन्द्र चतुर्वेदी (लखनऊ) ब्रज भाषा में होरी की रचना करते हुए कहते हैं कि ग्वाल, बाल कान्हा और गोपियों द्वारा होली का सुन्दर खेल खेला जा रहा है। पिचकारी, रंग, आनंद, उमंग और मृदंग के स्वरों में तरू, बादल और जमुना तक लाल हो गई है –
ब्रज बीच होरी की मची है कींच त्यों उलीचि
कोऊ रंग अंग–अंग मलत गलाल हैं
ग्वाल बाल अजब उताल से है दौरे परै
लीन्हें पिचकारी लाल रंग पै निहाल हैं
आनंद उमंग संग गोपी रसरंग मढ़ी
ताल दै मृदंग पै बजाबैं ढप–ताल हैं
लाल भये बादर तमाल तरु लाल, लाल
जमुना भई है लाल लाल नंदलाल हैं।।

माथुर चतुर्वेदी समुदाय से ब्रज भाषा के प्रसिद्ध कवि ऋषिकेश चतुर्वेदी (आगरा) ब्रज की होली का सुन्दर चित्रण करते हुए कृष्ण के संग ग्वाल बाल, बसंत, प्रकृति, काली कोयल सबको मुग्ध और उल्लासित बताते हुए कहते हैं कि –
आज ब्रज गलियन होरी रे
उमंग–भरे इत ग्वाल–बाल सब, उत नव गोरी रे।।
स्वागत करत बसन्त कौ लता, गुल्म, द्रुम, पात
सीतल, मन्द, सुगन्ध–युत, चलति तीन विधि वात
कूकै आम पर कोयल कारी, हो कोयल कारी,
कुंजन–ओरी रे आज।।

होली की लोक कला, लोक संगीत, साहित्य को अक्षुण्ण बनाए रखने के माथुर चतुर्वेदियों के प्रयास सदैव सर्वोत्तम रहे हैं। माथुर चतुर्वेदियों द्वारा विविध रागों (काफी / मालकोंस / विहाग / तीनताल / चलती / धमार / ज कड़ी / रसिया / चाल / पेड़ा / ठड़उआ / लेद / दीपचंदी / ठु मरी / भैरवी / चैती / दादरा / त्रिताल / पीलू / लंगुरिया) में बद्ध किताब **रंग झर बरसै री** इसका प्रमाण है। इस किताब के अब तक तीन संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। सर्वश्रेष्ठ ब्रज कवि हरि विलास, गुन विलास–भूदरदास, नारायण, राम प्रताप, किंकर, परमानन्द, लछीराम की रचनाओं के अब तक तीन संस्करण कुल 730 गीतों से आबद्ध हैं जो इसकी लोकप्रियता का प्रमाण है। ऐसे विज्ञ

पद रचनाकारों के होली पदों को संकलित कर प्रकाशित करने का देशभर में माथुर चतुर्वेदियों द्वारा किया एकमात्र प्रयास है।

होली संगीत को सहेजना तथा गायन माथुर चतुर्वेदियों के जीवन का एक आवश्यक अंग रहा है। गायन कला को सब कलाओं में श्रेष्ठ कहा गया है।

गायन कला की श्रेष्ठता नारद संहिता में सिद्ध की गई है।
''नाहँ वासामि बैकुण्ठे, योगिनो हदय न च,
मद्भक्ता यत्र गायन्ति, तत्र तिष्ठाति नारद।''
अर्थात्

भगवान श्रीकृष्ण नारद से कहते हैं कि ''न तो मैं बैकुंठ में रहता हूँ और न योगियों के हदय में ही रहता हूँ वरन् मेरे भक्त जहाँ गायन करते हैं वहाँ पर ही मैं सतत् निवास करता हूँ।''

नारद संहिता (1–6)
माथुर चतुर्वेदियों के पास ऐसी ही होली गायन की अनमोल विरासत है जिसे पीढ़ी दर पीढ़ी समुदाय द्वारा सहेजा गया है। माथुर चतुर्वेदियों में किया जाने वाला होली गायन मुख्य रूप से लोक संगीत से निबद्ध है। इस पर ब्रज का प्रभाव स्पष्ट नजर आता है। ब्रज का लोक संगीत और शास्त्रीय संगीत परस्पर अति निकट है क्योंकि वास्तव में ब्रज की बहुत सी लोक धुनों ने शास्त्रीयता को अपनाया है और अंत में शास्त्रीय राग कहलाने लगी जैसे राग काफी, जंगला, पीलू, गारा, झिंझोटी आदि।

माथुर चतुर्वेदियों में किया जाने वाला होली गायन लोक संगीत का हिस्सा होते हुए भी ब्रज के प्रभाव से शास्त्रीय रागों के निकट पहुँच जाता है। विषेषकर धमार/काफी/रसिया/लंगुरिया गायन में माथुर चतुर्वेदी समुदाय को महारत है। ऐतिहासिक प्रमाणों में ऐसे कई उदाहरण मिलते हैं जो इन तथ्यों को सिद्ध करते हैं कि चतुर्वेदी समुदाय द्वारा समाजहित में संगीत और विषेषकर होली गायन की षिक्षा स्वतः ही पीढ़ियों को मिलती गई है।

साहित्य मनीषी पं. द्वारकानाथ चतुर्वेदी (होलीपुरा) चतुर्वेदियों के संगीत प्रेम को लेकर अक्सर किस्सा सुनाया करते थे कि '' कोलकत्ता के संपन्न जमींदार परिवार की विदुषी महिला रविप्रभा बर्मन अक्सर संगीत – गोष्ठियों का आयोजन किया करती थीं। एक अवसर पर द्वारकानाथजी अपने अनुज स्व. हरिहरनाथजी के साथ संगीत गोष्ठी में शामिल हुए। इस अवसर हरिहरजी गायन कर रहे थे। उनकी आवाज अत्यंत मधुर थी। उनका गायन के समय ही गोष्ठी संगीत – सम्राट पं. जसराज जी का आगमन हुआ। पं. जसराज जी ने बड़े मनोयोग से उनका गायन सुना। गीत खत्म होने पर जसराज जी ने स्वयं यह बतलाया कि हरिहरजी जो गा रहे थे वह एक लोकगीत है और वही मूल है। हम इसे और परिष्कृत कर उत्कृष्ट बनाकर शास्त्रीय संगीत के अनुसार ढालते हैं और गाते हैं। पं. जसराजजी को हरिहरजी ने जब यह बताया कि उन्होंने गायन की कोई विधिवत शिक्षा नहीं ली है बल्कि अपने पूर्वजों का गायन सुन तथा उनके साथ अभ्यास कर सीखा है। पं. जसराज को बहुत अचरज हुआ कि बिना किसी शिक्षा के सिर्फ परंपरागत षिक्षा के माध्यम से यह इतना मधुर गायन कैसे कर रहे हैं। जसराजजी ने चतुर्वेदियों के इस परंपरागत सामाजिक कौशल षिक्षा को माना और खुले मन से इसकी प्रशंसा की।

श्रुति परंपरा के आधार पर वैदिक काल से लेकर आज तक माथुर चतुर्वेदी समाज में गायन की परंपरा चली आ रही है। इस दीर्घजीवी परंपरा के अनुगामी होली गायकों की एक लंबी श्रृंखला है इनमें पं. चंदन चौबे, पं. लक्ष्मन प्रसाद चौबे, हरि किशोर चतुर्वेदी 'बमबमजी', बालजी चतुर्वेदी, गुरू गणेशीलालजी चतुर्वेदी, सुरेन्द्रनाथ चतुर्वेदी, खड्गजीत चतुर्वेदी 'कक्का', पं. लाड़ली प्रसाद चतुर्वेदी, कामता प्रसाद चतुर्वेदी, हरिहरनाथजी चतुर्वेदी, अवधेश चन्द्रजी चतुर्वेदी, विलासरायजी चतुर्वेदी, भैंरोप्रसाद पाण्डे, नवल किशोर चतुर्वेदी 'दद्दू', उमाशंकर चतुर्वेदी, थानसिंह चतुर्वेदी, पीताम्बदास पाण्डे, स्व. मदनमोहन चतुर्वेदी, स्व. भगवती प्रसाद पाठक, स्व. प्यारेलाल चतुर्वेदी, स्व. त्रिभुवनदास चतुर्वेदी 'मुनमुनिया', स्व. बिहारी बाबा, स्व. चन्द्रसेन सोती, स्व. श्योप्रसाद, स्व. रूप किशोर, स्व. टीकाराम, स्व. अनन्तराम 'चौधरी', गजेन्द्रनाथ, स्व. नवल किशोर 'बिटऊजी', स्व. टीकाराम, स्व. पृथ्वीनाथ, श्री तारकनाथ, श्री तोषनिधि, श्री कैलाशचन्द्र, नरेन्द्रनाथ एवं बृजेन्द्रनाथ 'लालूजी', राकेश चन्द्र चतुर्वेदी, देवकृष्ण चतुर्वेदी, संजय कुमार 'भैया', हरीकान्त, अजय कुमार, लोकेन्द्रनाथ, किशोर रमण, हेमन्त कुमार एवं हरेश पाण्डे, विनय सोती आदि होली गायक हुए हैं जिन्होंने बिना किसी व्यावसायिक प्रशिक्षण के सिर्फ श्रुति परंपरा की अव्यावसायिक षिक्षा के आधार पर विविध रागों में होली गायन को अद्भुत आयाम दिये हैं।

III उपसंहार

लोक संगीत में गीतों को होली को साहित्यिक और सांस्कृतिक रूप से किसी समुदाय विशेष द्वारा सहेजा जाना अद्भुत और प्रषंसनीय कार्य है। माथुर चतुर्वेदी समुदाय द्वारा यह कार्य सदियों से चला आ रहा है। छीतस्वामी (1571–1642) द्वारा लिखे गये पद से लेकर वर्तमान काल तक सहेजे गये होली के गीत, पद एवं दस्तावेज इसका प्रमाण है। आज भदावर के विभिन्न क्षेत्रों में माथुर चतुर्वेदी समुदाय द्वारा प्रतिवर्ष होली पर्व के अवसर पर कई आयोजन होते हैं। इनमें धमार/रसिया/काफी/लंगुरिया आदि कई रागों पर जब माथुर चतुर्वेदी समुदाय मिलकर होली गायन करता है तो वातावरण अनुपम ध्वनि से गुंजायमान हो जाता है। माथुर चतुर्वेदियों द्वारा होली गीतों को लिखित विरासत के अलावा भी ऑडियो और वीडियो के रूप में सहेजा गया है। संतोष चौबे (भोपाल) के मार्गदर्शन में मैनपुरी (उप्र) और होलीपुरा (उप्र) में गाई जाने वाली माथुर चतुर्वेदियों की विषेष होलियों को संकलित किया गया है। इस प्रकार होली, लोकगीतों की साहित्यिक, सांस्कृतिक विरासत को चतुर्वेदी समुदाय द्वारा न केवल पीढ़ी दर पीढ़ी स्थानांतरित किया गया, अपितु विरासत के रूप में समाज के समक्ष लाने व इस कला में प्रषिक्षित करने का कार्य भी किया गया। धरोहर के रूप में लोककला होली गायन के दस्तावेजीकरण और डिजिटलाइजेषन के माध्यम से समाज को लोककला के विस्तार एवं प्रषिक्षण करने का कार्य भी

माथुर चतुर्वेदी समुदाय द्वारा किया जाना एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

[1] रामनरेश त्रिपाठी – कविता कौमुदी (ग्राम्य गीत) नवनीत प्रकाशन लिमिटेड, मुंबई 1953 पृ. 96

[2] सिद्धान्त कौमुदी पृष्ठ 417 (वेंकटेश्वर प्रेस मुंबई) हिंदी साहित्य का वृहत् इतिहास, षोडष भाग, पृष्ठ 1

[3] ब्रज की रासलीला : प्रभुदयाल मीत्तल

[4] काव्यांजलि – किशोरी देवी चतुर्वेदी पृ. 25

[5] ब्रज मुक्तावली –पं. गजेन्द्रनाथ चतुर्वेदी पृ. 20

[6] ऋषिकेष रचनावली –ऋषीकेष चतुर्वेदी, पृ. 132

[7] ब्रज संगीत सुगंध – डॉ. सत्या भार्गव

[8] रंग झर बरसै री – पं. द्वारकानाथ चतुर्वेदी – पृ. 19

[9] रंग झर बरसै री – संपादक द्वारकानाथ चतुर्वेदी पृ. 254–259

[10] ब्रज–रास में संगीत उत्पत्ति, विकास और स्वरूप – आरती श्रीवास्तव

[11] श्री भदावर चतुर्वेदी उत्थान समिति बाह, आगरा स्मारिका – 10 नवंबर 2002